



2026:AHC-LKO:7314-DB

प्रकाशनार्थ अनुमोदित

दिनांक 29.10.2025 को सुरक्षित

दिनांक 02.02.2026 को पारित

उच्च न्यायालय इलाहाबाद

लखनऊ

रिट ए संख्या 2736 वर्ष 2023

आलोक कुमार मित्रा

...याचिकाकर्ता(गण)

बनाम

भारत संघ, द्वारा सचिव, वित्त, राजस्व विभाग, भारत सरकार एवं अन्य

...प्रतिवादी(गण)

याचिकाकर्ता(गण) के अधिवक्ता: शोभित मोहन शुक्ला, मनोज कुमार चौरसिया, वत्सला सिंह

प्रतिवादी(गण) के अधिवक्ता: ए.एस.जी.आई. देवर्षि कुमार

न्यायालय संख्या - 2

माननीया न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चंद्रा

माननीय न्यायमूर्ति अमिताभ कुमार राय

(माननीय न्यायमूर्ति अमिताभ कुमार राय द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जे. एन. माथुर, जिन्हें विद्वान अधिवक्ता श्री शोभित मोहन शुक्ला द्वारा सहायता प्रदान की गई, तथा प्रतिवादियों की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री देवर्षि कुमार को सुना।

2. यह प्रस्तुत रिट याचिका, केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, लखनऊ द्वारा मूल आवेदन संख्या 332/00450/2019 "आलोक कुमार मित्रा बनाम भारत संघ" में दिनांक 20.02.2023 को पारित निर्णय और आदेश से उत्पन्न होती है, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता ने विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष दिनांक 10.06.2019 के आदेश को चुनौती दी थी, जिसके तहत उन्हें मौलिक नियम 56(जे)

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



का आह्वान करते हुए भारतीय राजस्व सेवा में आयकर आयुक्त के पद से अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त कर दिया गया था, साथ ही दिनांक 16.08.2019 के आदेश को भी चुनौती दी थी, जिसके द्वारा अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश के विरुद्ध उनके अभ्यावेदन को अस्वीकार कर दिया गया था।

3. याचिकाकर्ता भारतीय राजस्व सेवा, 1992 बैच के एक अधिकारी थे। संघ लोक सेवा आयोग के माध्यम से चयन के बाद, उन्हें शुरू में सहायक आयकर आयुक्त के पद पर नियुक्त किया गया था। अपना प्रशिक्षण पूरा करने पर, उन्हें आयकर विभाग में तैनात किया गया और उन्होंने वहां 1995 से 2014 तक सेवा दी। 2014 से 2017 तक, वह उत्तर प्रदेश सरकार में 'स्टेट एजेंसी फॉर कॉम्प्रिहेंसिव हेल्थ एंड इंटीग्रेटेड सर्विसेज' (एसएसीएचआईएस) के मुख्य कार्यकारी अधिकारी के रूप में प्रतिनियुक्ति पर थे। इसके बाद, याचिकाकर्ता को 16.09.2015 के आदेश के माध्यम से आयकर आयुक्त (वरिष्ठ प्रशासनिक ग्रेड) के पद पर पदोन्नत किया गया।

4. याचिकाकर्ता को 10.06.2019 के आदेश के माध्यम से आयकर आयुक्त (अपील)-III, कोच्चि (केरल) के पद से अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त कर दिया गया था, जिसे केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, लखनऊ के समक्ष चुनौती दी गई थी। उक्त आदेश याचिकाकर्ता को 11.06.2019 को तामील किया गया था। उन्होंने कार्यालय जाप दिनांक 11.10.1976 के पैराग्राफ 5 के संदर्भ में अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश के विरुद्ध 30.06.2019 को एक अभ्यावेदन प्रस्तुत किया, जिसे दिनांक 16.08.2019 के आदेश के माध्यम से अस्वीकार कर दिया गया था।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि मौलिक नियम 56(जे) के तहत पारित 10.06.2019 का अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश त्रुटिपूर्ण है, क्योंकि यह कार्यालय जापनों दिनांक 10.05.1974, 21.03.2014 और 11.09.2015 में निहित दिशानिर्देशों के विपरीत है। यह प्रस्तुत किया गया है कि उसमें निर्धारित उचित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया था और याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन को एक गैर-स्पष्ट और बिना तर्क दिए आदेश द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था, जिसमें कार्यालय जाप दिनांक 11.10.1976 में प्रदान की गई समय-सीमा का भी पालन नहीं किया गया।

6. यह भी प्रस्तुत किया गया है कि अनिवार्य सेवानिवृत्ति के 10.06.2019 के आदेश को पारित करने से पहले न तो मंत्रिमंडल की नियुक्ति समिति (एसीसी) से अनुमोदन प्राप्त किया गया था



और न ही केंद्रीय सतर्कता आयोग से परामर्श किया गया था, जो कार्यालय ज्ञाप दिनांक 10.05.1974 के विपरीत है।

7. यह भी प्रस्तुत किया गया है कि भारत सरकार ने 21.03.2014 का कार्यालय ज्ञाप जारी किया था जिसमें मौलिक नियम 56(जे) के तहत समय-समय पर समीक्षा का प्रावधान है। इसके पैरा 4 और 5 अनिवार्य सेवानिवृत्ति के लिए सिफारिशें करते समय समीक्षा समिति द्वारा पालन किए जाने वाले मानदंडों को निर्धारित करते हैं।

8. यह भी प्रस्तुत किया गया है कि कार्यालय ज्ञाप दिनांक 21.03.2014 के अनुसार, केवल उन अधिकारियों को अनिवार्य सेवानिवृत्ति के लिए विचार किया जाना चाहिए जिनकी ईमानदारी संदिग्ध है या जो अपने कर्तव्यों के निर्वहन में अप्रभावी हो गए हैं। इस उद्देश्य के लिए, केवल सेवा रिकॉर्ड के तत्काल पूर्ववर्ती पांच वर्षों या पदोन्नति के बाद के सेवा रिकॉर्ड को ध्यान में रखा जाना आवश्यक है। याचिकाकर्ता के विशिष्ट मामले में, उनका पिछला सेवा रिकॉर्ड और पदोन्नति के बाद का रिकॉर्ड, दोनों ही उत्कृष्ट बताए गए हैं।

9. यह भी प्रस्तुत किया गया है कि भारत सरकार द्वारा जारी कार्यालय ज्ञाप दिनांक 11.09.2015 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 'गुजरात राज्य बनाम उमेदभाई एम. पटेल' (2001) 3 एससीसी 314 में दिए गए निर्णय का उल्लेख किया गया है। उक्त कार्यालय ज्ञाप का पैरा 2 उन परिस्थितियों का विवरण देता है जिनके अंतर्गत अनिवार्य सेवानिवृत्ति के लिए किसी अधिकारी की उम्मीदवारी की जांच की जा सकती है।

10. याचिकाकर्ता का यह मामला है कि समीक्षा समिति द्वारा अनिवार्य सेवानिवृत्ति के लिए उनके मामले पर विचार करते समय कार्यालय ज्ञाप दिनांक 11.09.2015 में निहित दिशानिर्देशों का भी उल्लंघन किया गया था।

11. यह भी आगे प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता को 16.09.2015 के आदेश के माध्यम से योग्यता-सह-वरिष्ठता के आधार पर आयकर आयुक्त के पद पर पदोन्नत किया गया था। उनकी पदोन्नति स्वयं यह दर्शाने के लिए पर्याप्त है कि उनकी योग्यता संदेह से परे थी। उनकी पदोन्नति से पूर्व, सतर्कता अनापत्ति प्रदान की गई थी और विभागीय पदोन्नति समिति की सिफारिशों की मंत्रिमंडल की नियुक्ति समिति (एसीसी) द्वारा विधिवत जांच की गई थी और उसके बाद ही याचिकाकर्ता को पदोन्नत किया गया था। इस प्रकार, समीक्षा समिति के समक्ष अनिवार्य सेवानिवृत्ति की सिफारिश को उचित ठहराने के लिए कोई भी प्रतिकूल सामग्री उपलब्ध नहीं थी।



12. यह भी प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता की वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों में दर्ज टिप्पणियाँ लगातार यह दर्शाती हैं कि उन्हें उत्कृष्ट श्रेणी का अधिकारी माना गया था, जिनकी ईमानदारी संदेह से परे थी और जिनकी सामान्य प्रतिष्ठा की विभिन्न स्तरों पर सराहना की गई थी।

13. यह प्रस्तुत किया गया है कि कार्यालय ज्ञाप दिनांक 10.05.1974, 21.03.2014 और 11.09.2015 का संयुक्त अध्ययन यह प्रावधान करता है कि मौलिक नियम 56(जे) के अंतर्गत स्क्रीनिंग केवल उन्हीं मामलों में की जानी है जहाँ किसी अधिकारी की सेवाएँ सामान्य प्रशासन के लिए अब उपयोगी नहीं हैं और उद्देश्य "अनुपयोगी तत्वों" को बाहर करना है। इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए, अधिकारी के संपूर्ण सेवा रिकॉर्ड को उचित महत्व दिया जाना चाहिए। पदोन्नति से पूर्व की प्रतिकूल सामग्री अपना महत्व खो देती है और पदोन्नति के बाद के सेवा रिकॉर्ड को अधिक महत्व दिया जाना आवश्यक है। यह भी आगे प्रस्तुत किया गया है कि यदि प्रतिकूल प्रविष्टियों के बावजूद किसी अधिकारी को पदोन्नत किया जाता है, तो ऐसी पदोन्नति उसके पक्ष में कार्य करती है और ऐसी परिस्थितियों में अनिवार्य सेवानिवृत्ति का उपयोग दंड के उपकरण के रूप में नहीं किया जा सकता है।

14. यह भी आगे प्रस्तुत किया गया है कि आयकर आयुक्त के पद पर याचिकाकर्ता की पदोन्नति के बाद, उनकी सेवाएँ 'स्टेट एजेंसी फॉर कॉम्प्रिहेंसिव हेल्थ एंड इंटीग्रेटेड सर्विसेज' (एसएसीएचआईएस) के मुख्य कार्यकारी अधिकारी के रूप में प्रतिनियुक्ति पर लगाई गई थीं, जहाँ वह नवंबर 2017 तक उस क्षमता में तैनात रहे। प्रतिनियुक्ति की अवधि के दौरान, उनकी वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट यह दर्शाती है कि उन्हें लगातार एक उत्कृष्ट अधिकारी के रूप में वर्गीकृत किया गया था।

15. इसके विपरीत, प्रतिवादियों ने याचिकाकर्ता के दावों का खंडन करते हुए, समीक्षा समिति के कार्यवृत्त की ओर ध्यान आकर्षित किया है, जो याचिकाकर्ता की अनिवार्य सेवानिवृत्ति की सिफारिश करने का एकमात्र आधार है, जैसा कि मूल आवेदन संख्या 332/00450/2019 को खारिज करने के आवेदन के साथ दायर प्रति शपथपत्र के पैराग्राफ 7 में इंगित किया गया है।

16. यह प्रस्तुत किया गया है कि समीक्षा समिति ने अधिकारी की वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों (एसीआर)/वार्षिक प्रदर्शन मूल्यांकन रिपोर्टों (एपीएआर) और याचिकाकर्ता के विरुद्ध जारी आरोप-पत्रों सहित उनके संपूर्ण सेवा रिकॉर्ड को ध्यान में रखा और अपनी संतुष्टि दर्ज करने के बाद ही याचिकाकर्ता की अनिवार्य सेवानिवृत्ति की सिफारिश की।



17. प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने आगे यह प्रस्तुत किया है कि अभ्यावेदन समिति ने 10.06.2019 के अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश के विरुद्ध याचिकाकर्ता द्वारा दायर अभ्यावेदन पर विभिन्न कार्यालय ज्ञापनों में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार विधिवत विचार किया। समिति ने याचिकाकर्ता के संपूर्ण सेवा रिकॉर्ड की जांच की और यह माना कि अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश में कोई अवैधता नहीं थी। निर्णय लेते समय, इस विषय पर समय-समय पर जारी कार्यालय ज्ञापनों पर विधिवत विचार किया गया और कानून की निर्धारित प्रक्रिया का पालन करने के बाद, याचिकाकर्ता को अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त किया गया।

18. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के इस तर्क के संबंध में कि मंत्रिमंडल की नियुक्ति समिति (एसीसी) से कोई अनुमोदन प्राप्त नहीं किया गया था, प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि सरकारी सेवा में शामिल होने के समय याचिकाकर्ता को राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया गया था। सीनियर एडमिनिस्ट्रेटिव ग्रेड में उनकी पदोन्नति भी एसीसी द्वारा पैनल में शामिल किए जाने के बाद राष्ट्रपति के आदेशों के तहत की गई थी। इसका अर्थ यह नहीं है कि एसीसी नियुक्ति प्राधिकारी है; बल्कि, याचिकाकर्ता का नियुक्ति प्राधिकारी राष्ट्रपति ही बना हुआ है। अतः, यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता का यह दावा कि उन्हें सक्षम प्राधिकारी से अनुमोदन प्राप्त किए बिना अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त नहीं किया गया था, गलत धारणा पर आधारित है।

19. प्रत्युत्तर दलीलों में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि समीक्षा समिति ने ऐसी प्रतिकूल सामग्री पर भरोसा किया, जो वास्तव में अस्तित्व में ही नहीं थी। विशेष रूप से, 15.07.2013 का आरोप-पत्र, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई थी, उसे विद्वान केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण, लखनऊ द्वारा मूल आवेदन संख्या 332/00353/2013 में 09.04.2018 को पारित निर्णय और आदेश के माध्यम से निरस्त कर दिया गया था। उक्त आदेश अंतिम हो गया था और इसे विभाग द्वारा स्वयं स्वीकार कर लिया गया था।

20. यह प्रस्तुत किया गया है कि एक बार जब आरोप-पत्र को निरस्त कर दिया गया, तो उसमें निहित आरोपों को याचिकाकर्ता के विरुद्ध प्रतिकूल राय बनाने के लिए समीक्षा समिति द्वारा विचार में नहीं लिया जा सकता था और उन्हें मौलिक नियम 56(जे) के तहत कार्रवाई का आधार नहीं बनाया जा सकता था।



21. संक्षेप में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया:

(i) याचिकाकर्ता को निशाना बनाया गया है और अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश मनमाने ढंग से पारित किया गया है, क्योंकि जब विभाग अनुशासनात्मक कार्यवाही में कोई कार्रवाई करने में विफल रहा, तो उसने मौलिक नियम 56(जे) के अंतर्गत अनिवार्य सेवानिवृत्ति का मार्ग अपनाया और याचिकाकर्ता को अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त कर दिया।

(ii) याचिकाकर्ता के विरुद्ध मौलिक नियम 56(जे) लागू करने का निर्णय जनहित में नहीं लिया गया था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने 'एस. राम चंद्र राजू बनाम ओडिशा राज्य' (1994) 3 एससीसी 424 में, "जनहित" अभिव्यक्ति की व्याख्या करते हुए स्पष्ट किया है कि एक अधिकारी का आचरण और प्रतिष्ठा ऐसी होनी चाहिए कि सेवा में उनका बने रहना लोक सेवा के लिए खतरा और जनहित के लिए हानिकारक हो। प्रतिवादियों द्वारा अपने जवाबी हलफनामे में ऐसा कोई अभिकथन नहीं किया गया है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने 'गुजरात राज्य और अन्य बनाम सूर्यकांत चुनीलाल शाह' (1999) 1 एससीसी 529; 'भारत संघ बनाम कर्नल जे. एन. सिन्हा' (1970) 2 एससीसी 458; और 'ज्ञान सिंह मान बनाम पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय' (1980) 4 एससीसी 266 में, अनिवार्य सेवानिवृत्ति के संदर्भ में "जनहित" अभिव्यक्ति की आगे व्याख्या करते हुए इसे उन मामलों के रूप में संदर्भित किया है जहाँ लोक प्रशासन का हित ऐसे सरकारी कर्मचारी की सेवानिवृत्ति की मांग करता है, जो समय के साथ, सरकारी सेवा में अपेक्षित दक्षता और उपयोगिता के मानक को बनाए रखने में असमर्थ हो गया हो।

(iii) 10.06.2019 का अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश अस्तित्वहीन सामग्री पर आधारित है और समीक्षा समिति की राय नियुक्ति प्राधिकारी की संतुष्टि का स्थान नहीं ले सकती है।

(iv) आवेदक को अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करने की राय समीक्षा समिति द्वारा बनाई गई थी, हालाँकि, निर्धारित "उचित प्राधिकारी" अर्थात् मंत्रिमंडल की नियुक्ति समिति (एसीसी) का अनुमोदन प्राप्त नहीं किया गया था। चूँकि याचिकाकर्ता एसीसी द्वारा नियुक्त व्यक्ति हैं, इसलिए मौलिक नियम 56(जे) के तहत ऐसा अनुमोदन अनिवार्य था। परिणामतः, यह राय उचित प्राधिकारी द्वारा नहीं बनाई गई थी, जिससे यह कार्रवाई अवैध हो जाती है।

(v) 10.05.1974, 21.03.2014 और 11.09.2015 के कार्यालय ज्ञाप यह अनिवार्य करते हैं कि किसी अधिकारी पर स्क्रीनिंग के लिए केवल 50/55 वर्ष की आयु में ही विचार किया जा सकता है। किसी अन्य आयु में विचार करने के लिए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने 'उत्तर प्रदेश राज्य



बनाम चंद्र मोहन निगम' (1977) 4 एससीसी 345 (पैराग्राफ 29) में यह निर्धारित किया है कि अखंडता के संबंध में ताज़ा या नई सामग्री (50 वर्ष की आयु के बाद की) का होना आवश्यक है। कानून के संचालन द्वारा और मौलिक नियम 56(जे) की अनिवार्य योजना के अनुसार, जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विभिन्न निर्णयों में स्पष्ट किया गया है, यह तथ्य कि याचिकाकर्ता 52.5 वर्ष की आयु तक सेवा में बना रहा, स्पष्ट रूप से यह स्थापित करता है कि उसने 50 वर्ष की आयु में अनिवार्य स्क्रीनिंग को सफलतापूर्वक उत्तीर्ण कर लिया था, जो कि एक वैधानिक आवश्यकता के रूप में सभी सरकारी सेवकों के लिए अनिवार्य रूप से की जाती है।

(vi) 20.02.2023 का निर्णय और आदेश पारित करते समय, विद्वान अधिकरण ने याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए मुद्दों पर कोई निष्कर्ष नहीं दिया। इसके बजाय, इसने **'कैप्टन प्रमोद कुमार बजाज बनाम भारत संघ और अन्य'** में माननीय उच्च न्यायालय द्वारा 31.05.2022 को रिट-ए संख्या 24856 वर्ष 2020 में पारित निर्णय पर भरोसा किया, जिसे बाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 03.03.2023 को सिविल अपील संख्या 6161 वर्ष 2022 में निरस्त कर दिया गया था। अतः, विद्वान अधिकरण का निर्णय उस निर्णय पर आधारित है जिसे माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ओवररूल कर दिया गया है।

(vii) 10.06.2019 का अनिवार्य सेवानिवृत्ति का दोषपूर्ण आदेश, मौलिक नियम 56(जे) के नोट-1 में परिभाषित "उचित प्राधिकारी" के अनुमोदन से रहित है। केवल इसी आधार पर, अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश शुरुआत से ही शून्य है और किसी भी स्थिति में, कानूनी दुर्भावना से दूषित होने के कारण निरस्त किए जाने योग्य है।

22. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के बाद, हम सरकारी सेवक की अनिवार्य सेवानिवृत्ति को नियंत्रित करने वाले वैधानिक प्रावधानों के आलोक में, याचिकाकर्ता को अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करने के लिए प्रतिवादियों द्वारा लिए गए निर्णय की जांच करने के लिए आगे बढ़ते हैं।

23. मौलिक नियम 56(जे) को नीचे पुनरुत्पादित किया गया है :

अध्याय IX

सेवानिवृत्ति

मौलिक नियम 56(a)



(j) इस नियम में निहित किसी भी बात के होते हुए भी, उचित प्राधिकारी के पास, यदि उसकी यह राय है कि ऐसा करना जनहित में है, तो किसी भी सरकारी सेवक को लिखित में कम से कम तीन महीने का नोटिस देकर या ऐसे नोटिस के बदले में तीन महीने का वेतन और भत्ते देकर सेवानिवृत्त करने का पूर्ण अधिकार होगा;

(i) यदि वह किसी स्थायी, अर्ध-स्थायी या अस्थायी क्षमता में 'ग्रुप ए' या 'ग्रुप बी' सेवा या पद पर है और उसने 35 वर्ष की आयु प्राप्त करने से पहले सरकारी सेवा में प्रवेश किया था, तो 50 वर्ष की आयु प्राप्त करने के बाद;

(ii) किसी अन्य मामले में, पचपन वर्ष की आयु प्राप्त करने के बाद:

परंतु यह कि इस खंड की कोई भी बात खंड (ग) में निर्दिष्ट उस सरकारी सेवक पर लागू नहीं होगी, जिसने 23 जुलाई, 1966 को या उससे पहले सरकारी सेवा में प्रवेश किया हो।

(j) (i) यदि समय से पूर्व सेवानिवृत्त किए गए सरकारी सेवक के अभ्यावेदन पर या अन्यथा मामले की समीक्षा करने पर, सरकारी सेवक को सेवा में बहाल करने का निर्णय लिया जाता है, तो बहाली का आदेश देने वाला प्राधिकारी, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, देय और स्वीकार्य प्रकार के अवकाश, जिसमें असाधारण अवकाश भी शामिल है, को प्रदान करके या उस अवधि को 'डाईज़ नॉन' मानकर, समय से पूर्व सेवानिवृत्ति की तिथि और बहाली की तिथि के बीच की अवधि को विनियमित कर सकता है:

परंतु यह कि यदि बहाली का आदेश देने वाले प्राधिकारी द्वारा यह विशेष रूप से माना जाता है कि मामले की परिस्थितियों में समय से पूर्व सेवानिवृत्ति ही उचित नहीं थी, या, यदि समय से पूर्व सेवानिवृत्ति के आदेश को विधि के न्यायालय द्वारा निरस्त कर दिया जाता है, तो बीच की अवधि को वेतन और भत्तों सहित सभी उद्देश्यों के लिए ड्यूटी पर बिताई गई अवधि के रूप में माना जाएगा।

(ii) जहाँ समय से पूर्व सेवानिवृत्ति के आदेश को कानून की अदालत द्वारा समय से पूर्व सेवानिवृत्ति की तिथि और बहाली की तिथि के बीच की अवधि को विनियमित करने के संबंध में विशिष्ट निर्देशों के साथ निरस्त कर दिया जाता है और आगे



कोई अपील दायर करने का प्रस्ताव नहीं है, तो उक्त अवधि को अदालत के निर्देशों के अनुसार विनियमित किया जाएगा।

24. मौलिक नियम 56(जे) यह प्रावधान करता है कि उचित प्राधिकारी के पास सरकारी सेवक को अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करने का पूर्ण अधिकार है। "उचित प्राधिकारी" शब्द को उस प्राधिकारी के रूप में परिभाषित किया गया है जिसके पास पद या सेवा पर मूल नियुक्तियाँ करने की शक्ति है। 30.05.2016 का कार्यालय ज्ञाप, जो रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 17 के रूप में संलग्न है और "प्रशासन का सुदृढीकरण-आवधिक समीक्षा" विषय के अंतर्गत जारी किया गया है, स्पष्ट करता है कि मौलिक नियम 56(जे) के तहत, "उचित प्राधिकारी" वह प्राधिकारी है जो मूल नियुक्तियाँ करने में सक्षम है। 30.05.2016 का कार्यालय ज्ञाप नीचे पुनरुत्पादित किया गया है :

"डीओपीटी ने अपने 11.09.2015 के कार्यालय ज्ञाप के माध्यम से सभी मंत्रालयों/विभागों को यह निर्देशित किया है कि वे जनहित में यह सुनिश्चित करने के लिए मौलिक नियम 56(जे) और सीसीएस (पेंशन) नियमों के नियम 48 के तहत आवधिक समीक्षा करें कि सरकारी सेवक को सेवा में बनाए रखा जाना चाहिए या सेवा से सेवानिवृत्त कर दिया जाना चाहिए।

1. मौलिक नियम 56(जे) और सीसीएस (पेंशन) नियम, 1972 के नियम 48 में निम्नलिखित प्रावधान हैं:

मौलिक नियम 56(जे) इस नियम में निहित किसी भी बात के होते हुए भी, उचित प्राधिकारी के पास, यदि उसकी यह राय है कि ऐसा करना जनहित में है, तो किसी भी सरकारी सेवक को लिखित में कम से कम तीन महीने का नोटिस देकर या ऐसे नोटिस के बदले में तीन महीने का वेतन और भत्ते देकर सेवानिवृत्त करने का पूर्ण अधिकार होगा;

(i) यदि वह किसी स्थायी, अर्ध-स्थायी या अस्थायी क्षमता में 'ग्रुप ए' या 'ग्रुप बी' सेवा या पद पर है और उसने 35 वर्ष की आयु प्राप्त करने से पहले सरकारी सेवा में प्रवेश किया था, तो 50 वर्ष की आयु प्राप्त करने के बाद।

(ii) किसी अन्य मामले में, पचपन वर्ष की आयु प्राप्त करने के बाद।



मौलिक नियम 56 के तहत, "उचित प्राधिकारी" को उस प्राधिकारी के रूप में परिभाषित किया गया है जिसके पास पद या सेवा पर मूल नियुक्तियाँ करने की शक्ति है।"

25. यह विवादित नहीं है कि याचिकाकर्ता का नियुक्ति प्राधिकारी राष्ट्रपति है और अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश राष्ट्रपति द्वारा जारी किया गया है। अतः, याचिकाकर्ता का यह दावा कि अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश पारित करने से पहले सक्षम प्राधिकारी से कोई अनुमोदन नहीं लिया गया था, गलत धारणा पर आधारित है, क्योंकि याचिकाकर्ता के नियुक्ति प्राधिकारी होने के नाते, राष्ट्रपति ने 10.06.2019 का आदेश पारित किया है।

26. अतः, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क कि 10.06.2019 के अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश को पारित करने से पहले मंत्रिमंडल की नियुक्ति समिति (एसीसी) का अनुमोदन आवश्यक था, गलत धारणा पर आधारित है, क्योंकि 11.09.2015 के कार्यालय ज्ञापन में एसीसी के अनुमोदन के संबंध में ऐसी कोई आवश्यकता निर्धारित नहीं की गई है।

27. याचिकाकर्ता का यह तर्क कि 10.05.1974, 21.03.2014 और 11.09.2015 के कार्यालय ज्ञापनों के तहत निर्धारित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है, भी गलत धारणा पर आधारित है। 11.09.2015 का कार्यालय ज्ञापन, जो रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 16 के रूप में संलग्न है, पैराग्राफ 3 में यह प्रावधान करता है कि प्रत्येक समीक्षा के दौरान, संबंधित अधिकारी के संपूर्ण सेवा रिकॉर्ड पर विचार किया जाना आवश्यक है और समीक्षा को केवल एसीआर/एपीएआर तक ही सीमित नहीं रखा जाना चाहिए।

28. 11.09.2015 के कार्यालय ज्ञापन का पैराग्राफ 7 आगे यह प्रावधान करता है कि संवर्ग नियंत्रण प्राधिकरणों के सचिव उपयुक्त स्तर पर दो सदस्यों वाली समीक्षा समितियों का गठन करेंगे। इसमें यह भी निर्धारित किया गया है कि 'ग्रुप A' पदों पर आसीन अधिकारियों के मामले में, विशेष रूप से एसीसी द्वारा नियुक्त व्यक्तियों के संबंध में, समीक्षा समिति का नेतृत्व संबंधित मंत्रालय/विभाग के सचिव द्वारा किया जा सकता है, जो कि संवर्ग नियंत्रण प्राधिकरण होते हैं। वर्तमान मामले में, जिस समीक्षा समिति ने याचिकाकर्ता के अनिवार्य सेवानिवृत्ति के मामले पर विचार किया, वह सचिव (राजस्व) की अध्यक्षता वाली दो सदस्यीय समिति थी, जिसमें दूसरे सदस्य के रूप में केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड के अध्यक्ष शामिल थे, जो अनिवार्य सेवानिवृत्ति की प्रक्रिया को विनियमित करने वाले 11.09.2015 के कार्यालय ज्ञापन के पैराग्राफ 7 की आवश्यकताओं के अनुरूप था।



समीक्षा समिति को आंतरिक समिति के सदस्यों द्वारा सहायता प्रदान की गई थी, जिसमें अध्यक्ष के रूप में प्रधान महानिदेशक (एचआरडी) और सदस्यों के रूप में एडीजी (एचआरडी-1) तथा एडीजी (सतर्कता-1) शामिल थे, जैसा कि 11.09.2015 के परिपत्र के पैराग्राफ 9 के तहत आवश्यक है। समीक्षा समिति ने याचिकाकर्ता के संपूर्ण सेवा रिकॉर्ड पर विचार किया, जिसमें उनकी एसीआरs/एपीएआरs, सूचित किए गए चार्ज मेमो (आरोप पत्र) के साथ-साथ असूचित टिप्पणियाँ, अनुशासनात्मक मामले आदि शामिल थे, और याचिकाकर्ता को अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करने की सिफारिश की, जिसे उचित प्राधिकारी अर्थात् राष्ट्रपति द्वारा स्वीकार कर लिया गया।

29. याचिकाकर्ता का यह तर्क भी गलत धारणा पर आधारित है कि 10.06.2019 का अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश पारित करते समय उसे लक्षित किया गया और उत्पीड़ित किया गया है। अनिवार्य सेवानिवृत्ति की प्रक्रिया अपनाते समय, भारत संघ द्वारा याचिकाकर्ता के साथ-साथ 67 अन्य अधिकारियों के विरुद्ध भी कार्रवाई की गई थी। अतः, यह ऐसा मामला नहीं है जहाँ केवल याचिकाकर्ता को ही इस कार्रवाई के लिए चुना गया हो। उचित प्रक्रिया का पालन किया गया था; मामले की जांच शुरू में समीक्षा समिति द्वारा की गई, जिसकी सिफारिश पर नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा विचार किया गया और उसे स्वीकार किया गया और उसके बाद याचिकाकर्ता को अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करने का निर्णय लिया गया। मामले की दोबारा जांच कैबिनेट सचिव द्वारा गठित अभ्यावेदन समिति द्वारा की गई, जिसमें भारत सरकार के सचिव स्तर के अधिकारी, भारत सरकार के अतिरिक्त सचिव/संयुक्त सचिव स्तर के अधिकारी और संबंधित अधिकारी के संवर्ग नियंत्रण प्राधिकरण से नामांकित एक अधिकारी शामिल थे। इस समिति ने अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश की पुष्टि की और याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन को खारिज कर दिया। कार्यालय ज्ञाप संख्या 25013/01/2013-Estt. ए-IV दिनांक 01.03.2016 अभ्यावेदन समिति के गठन का प्रावधान करता है, जिसका याचिकाकर्ता के मामले में अभ्यावेदन समिति का गठन करते समय विधिवत पालन किया गया था। इन परिस्थितियों में, यह नहीं कहा जा सकता है कि याचिकाकर्ता के प्रति कोई दुर्भावना रखी गई थी। मनमानेपन का आरोप भी गलत धारणा पर आधारित है, क्योंकि अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश 11.09.2015 के कार्यालय ज्ञाप के तहत निर्धारित उचित प्रक्रिया का पालन करने के बाद और मौलिक नियम 56(जे) में निहित वैधानिक आवश्यकताओं के अनुसार पारित किया गया था।

30. समीक्षा समिति द्वारा दर्ज की गई संतुष्टि के संबंध में, हमारा मानना है कि भारत संघ द्वारा विद्वान ट्रिब्यूनल के समक्ष दायर लिखित बयान/प्रति शपथपत्र के पैराग्राफ 7 में निहित



विवरणों के अनुसार, जो समीक्षा समिति की निर्णय लेने की प्रक्रिया के कार्यवृत्त को निर्धारित करता है, यह नहीं कहा जा सकता है कि समीक्षा समिति किसी सामग्री आधार के बिना अपने निर्णय पर पहुंची। समीक्षा समिति ने याचिकाकर्ता की अनिवार्य सेवानिवृत्ति की सिफारिश करने से पहले विधिवत रूप से अपनी संतुष्टि दर्ज की। लिखित प्रति शपथपत्र के पैराग्राफ 7 में निहित समीक्षा समिति के कार्यवृत्त नीचे पुनरुत्पादित किए गए हैं:

"पैरा-7 - शुरुआत में यह प्रस्तुत किया जाता है कि समीक्षा समिति ने आवेदक के संपूर्ण सेवा रिकॉर्ड की जांच करने के बाद एक तर्कसंगत आदेश पारित किया था। समिति ने निम्नलिखित तथ्यों पर ध्यान दिया और अपना तर्कसंगत आदेश पारित किया:

(i) फाइल संख्या डीजीआईटी(वी)/ईजेड/कॉम/62/03 के अवलोकन से यह देखा गया कि आवेदक के विरुद्ध एक शिकायत पर कार्रवाई की गई थी, जिसके परिणामस्वरूप सीसीएस (सीसीए) नियमों के नियम 14 के तहत बड़े दंड के लिए दिनांक 15.07.2013 का आरोप-पत्र (डीजीआईटी(वी)/डीपी/483/2013) जारी किया गया था। आवेदक पर लखनऊ में डीडीआईटी (अन्वेषण II) के रूप में कार्य करते समय सहारा समूह से संबंधित कर चोरी याचिका (टीईपी) में घटिया जांच करने का आरोप लगाया गया था। आवेदक पर तब भी उच्च अधिकारियों को रिपोर्ट भेजने का आरोप लगाया गया था जब जांच पूरी नहीं हुई थी। उक्त रिपोर्ट दिनांक 30.05.2002 के परिणामस्वरूप सहारा समूह को अनुचित लाभ हो सकता था क्योंकि आवेदक ने समूह को 'क्लीन चिट' दे दी थी। विभाग द्वारा की गई जांच से पता चला कि अधिकारी ने कर चोरी याचिका (टीईपी) को बहुत ही लापरवाही से संभाला था और जांच को निष्ठापूर्वक पूरा नहीं किया था। हालाँकि, बाद में कैट, लखनऊ बेंच द्वारा तकनीकी आधारों पर, जैसे कि मामले की कार्यवाही में देरी, के कारण आरोप-पत्र को रद्द कर दिया गया था। जिस तरीके से आवेदक द्वारा इन कर चोरी याचिकाओं को प्राथमिकता पर लिया गया था, वह पूरी घटना पर संदेह पैदा करता है। अतः, समिति का यह विचार था कि श्री आलोक कुमार मित्रा की सत्यनिष्ठा संदिग्ध है।

(ii) फाइल संख्या डीजीआईटी(वी)/एनजेड/कॉम/64/03 के अवलोकन से पता चलता है कि 24.02.2003 को सुश्री राजलक्ष्मी वर्मा, विधायक, उत्तर प्रदेश से श्री आलोक कुमार मित्रा, तत्कालीन डीडीआईटी (अन्वेषण), लखनऊ और एक अन्य अधिकारी



के विरुद्ध प्राप्त शिकायत पर कार्रवाई की गई थी। शिकायत में यह आरोप लगाया गया था कि आवेदक, तत्कालीन उप निदेशक आयकर (अन्वेषण), लखनऊ और एक अन्य अधिकारी सुश्री अर्चना चौधरी, तत्कालीन अतिरिक्त निदेशक आयकर (अन्वेषण), लखनऊ ने अपने पद का दुरुपयोग किया था और फाइलों को अनुचित तरीके से संभाल रहे थे। शिकायत में विदेशों में आलीशान छुट्टियों, नोएडा/दिल्ली में बेनामी संपत्तियों के कब्जे और सर्च विंग (अन्वेषण शाखा) के गुप्त कोष से अवैध निकासी के आरोप लगाए गए थे। यह आरोप लगाया गया था कि आवेदक और सुश्री चौधरी ने लखनऊ में अपनी तैनाती को लगातार नौ वर्षों से अधिक समय तक बनाए रखा था। माननीय विधायक ने आयकर निदेशक (अन्वेषण), कानपुर की दिनांक 10/11/12.2002 की एक रिपोर्ट भी प्रेषित की, जिसे महानिदेशक आयकर (अन्वेषण), उत्तर, लखनऊ को संबोधित किया गया था, जिसमें इन दोनों अधिकारियों द्वारा अपने पद का दुरुपयोग करने के निष्कर्ष दर्ज किए गए थे।

(iii) समीक्षा समिति ने आगे यह नोट किया कि इन अधिकारियों द्वारा संभाले गए छह कर चोरी याचिका (टीईपी) मामलों की विभाग द्वारा जांच की गई थी। अपनी 10/11.12.2002 की रिपोर्ट में, आयकर निदेशक (अन्वेषण), कानपुर ने कहा था कि इन छह मामलों में टीईपी को रजिस्टर में दर्ज भी नहीं किया गया था और न ही उन्हें उस समय की आवश्यकता के अनुसार वर्गीकरण के लिए आयकर निदेशक (अन्वेषण), कानपुर को भेजा गया था। इन छह मामलों में टीईपी को नियमानुसार क्रम से हटकर जांच के लिए लिया गया था, जबकि उस समय अतिरिक्त आयकर निदेशक (अन्वेषण), लखनऊ के कार्यालय में बड़ी संख्या में टीईपी लंबे समय से लंबित और बिना देखे पड़े हुए थे। रिपोर्ट में स्पष्ट रूप से कुछ गलत इरादों के साथ अतिरिक्त आयकर निदेशक (अन्वेषण), लखनऊ के कार्यालय में इन टीईपी के सृजित किए जाने की संभावना की ओर इशारा किया गया। जिस तरह से इन टीईपी का निपटारा किया गया, वह इन दो अधिकारियों की ओर से दुर्भावनापूर्ण इरादे को स्पष्ट रूप से दर्शाता है। चूंकि ये दोनों अधिकारी गुप-ए अधिकारी थे, इसलिए आयकर निदेशक (अन्वेषण) ने अपने स्तर पर आवश्यक कार्रवाई करने के लिए आयकर निदेशक (सतर्कता) को संदर्भ भेजने की सिफारिश की।



(iv) आयकर निदेशक (सतर्कता), उत्तर और उप सीवीओ, नई दिल्ली ने दिनांक 23.09.2002 के पत्र के माध्यम से महानिदेशक आयकर (सतर्कता) को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसे तत्कालीन मंत्री, उत्तर प्रदेश, श्री रवि गौतम और तत्कालीन विधायक, उत्तर प्रदेश, श्रीमती राजलक्ष्मी वर्मा द्वारा (दिनांक रहित) शिकायत के साथ अघोषित किया गया था। पहली शिकायत में लगाए गए आरोप सामान्य प्रकृति के पाए गए और सुनी-सुनाई बातों पर आधारित प्रतीत हुए। दूसरी शिकायत के संबंध में, टीईपी के रिकॉर्ड मंगवाए गए और उनके निरीक्षण से उक्त टीईपी के निपटान में गंभीर अनियमितताएं पाई गईं, जिन्हें नीचे सूचीबद्ध किया गया है:

(क) निर्धारित प्रक्रिया/दिशानिर्देशों की पूर्ण अवहेलना करते हुए इन टीईपी को टीईपी रजिस्टर में दर्ज करने में विफल रहे और इन टीईपी को मासिक रिपोर्ट में निर्धारित प्रारूप में रिपोर्ट भी नहीं किया। इस प्रकार, उन्होंने उच्च अधिकारियों/सीबीडीटी से इन टीईपी के अस्तित्व को छिपाने का प्रयास किया;

(ख) आयकर अधिनियम, 1961 का स्पष्ट उल्लंघन करते हुए सक्षम प्राधिकारी की पूर्व स्वीकृति लिए बिना आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 133(6), 135 और 136 के तहत पूछताछ पत्र/नोटिस जारी किए।

(ग) कर-निर्धारिती को व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने के लिए निर्देशित करना, जिसकी आवश्यकता नहीं थी;

(घ) कथित अघोषित काले धन की शिकायतों को आयकर अधिनियम की उचित धारा के तहत संसाधित नहीं करना या उच्च प्राधिकारी से निर्देश या मार्गदर्शन नहीं मांगना;

(ङ) काले धन का पता लगाने के लिए गोपनीय तरीके से जांच करने के बजाय, दुर्भावनापूर्ण इरादे से जानबूझकर कर-निर्धारिती को जांच के बारे में अवगत करा दिया;

(f) सभी आवश्यक जानकारी प्राप्त कर लेने के बाद भी काफी समय तक कोई कार्रवाई नहीं करना।

(v) तदनुसार, इन दोनों अधिकारियों के विरुद्ध बड़े दंड की कार्यवाही शुरू करने की सिफारिश के साथ 13.07.2004 को मामला केंद्रीय सतर्कता आयोग को उनकी



प्रथम चरण की सलाह के लिए भेजा गया था। सीवीसी ने दिनांक 28.07.2004 के कार्यालय ज्ञाप के माध्यम से आवेदक और सुश्री चौधरी के विरुद्ध बड़े दंड की कार्यवाही शुरू करने की सलाह दी और मामले में जांच अधिकारी को भी नामित किया।

(vi) उस दौरान, सीबीडीटी ने दिनांक 06.05.2004 के आदेश के माध्यम से सीसीआईटी, लखनऊ चार्ज से संबंधित मामलों का अधिकार क्षेत्र डीआईटी (सतर्कता), पूर्व को स्थानांतरित कर दिया। इसलिए, डीआईटी (सतर्कता), उत्तर ने दोनों शिकायतों को अलग करने और तत्कालीन विधायक, उत्तर प्रदेश, श्रीमती राजलक्ष्मी वर्मा की शिकायत की आगे की जांच के लिए डीआईटी (सतर्कता), पूर्व द्वारा एक नई फाइल खोलने की सिफारिश की, जिसके पास तब मामले का अधिकार क्षेत्र था। बाद की जांच में जुटाए गए नए तथ्यों के प्रकाश में, वित्त राज्य मंत्री (राजस्व) ने मामले को सीवीसी के पास पुनर्विचार के लिए भेजने की मंजूरी दी, जिसमें आवेदक के खिलाफ मामले को बंद करने और दूसरे अधिकारी के खिलाफ प्रशासनिक कार्रवाई करने की सिफारिश की गई थी। सीवीसी के कार्यालय ज्ञाप संख्या 004/ITX/086-65406 दिनांक 17.08.2007 के अनुसार, अधिकारी के खिलाफ शिकायत 09.05.2008 को बंद कर दी गई थी।

(vii) यद्यपि शिकायत बंद कर दी गई थी, समिति ने नोट किया कि डीओपीटी के कार्यालय ज्ञाप संख्या 25013/01/2013-Estt. A-IV दिनांक 11.09.2015 के अनुसार, किसी कर्मचारी की सत्यनिष्ठा पर विचार करते समय, कर्मचारी द्वारा की गई कार्रवाई या निर्णय जो पारदर्शी प्रतीत नहीं होते, उसके विरुद्ध की गई शिकायतें, या संदिग्ध संपत्ति लेन-देन, जिनके लिए विभागीय कार्यवाही शुरू करने के लिए पर्याप्त साक्ष्य हो सकते हैं, उन्हें ध्यान में रखा जा सकता है। समिति ने नोट किया कि यद्यपि शिकायत इस आधार पर बंद कर दी गई थी कि इसमें अवैध परितोष की मांग का विशेष रूप से उल्लेख नहीं था और आवेदक को टीईपी मामलों के अंतिम रूप दिए जाने से पहले स्थानांतरित कर दिया गया था, फिर भी जिस तरीके से टीईपी को प्राथमिकता पर लिया गया, वह पूरी घटना पर संदेह पैदा करता है।

(viii) समिति ने फाइल संख्या डीजीआईटी (वी)/एनजेड/वीसीआर/01/18 की भी जांच की, जिसमें मेसर्स मेट्रो कार्गो कैरियर्स, लखनऊ के पार्टनर श्री जुबैर द्वारा आवेदक,



अपर आयकर आयुक्त, लखनऊ और सुश्री रानू बिस्वास, उप आयकर आयुक्त, लखनऊ के विरुद्ध दिनांक 24.01.2011 को की गई एक शिकायत पर कार्रवाई की गई थी। यह आरोप लगाया गया था कि कर-निर्धारण 31.12.2010 को बाधित हो रहा था, लेकिन सुश्री रानू बिस्वास ने 21.12.2010 को बैंक पावती पर्ची पर उनके अधिवक्ता श्री के.एस. रस्तोगी के हस्ताक्षर प्राप्त कर लिए थे। यह आरोप लगाया गया था कि सुश्री रानू बिस्वास ने बिना किसी कर मांग के मामले को निपटाने के लिए 50 लाख रुपये की मांग की थी। शिकायतकर्ता के अधिवक्ता को बिना हस्ताक्षरित कर-निर्धारण आदेश की एक प्रति दिखाई गई, जिसमें 38.06 करोड़ रुपये की वृद्धि का उल्लेख था। यह भी आरोप लगाया गया था कि सुश्री रानू बिस्वास ने अधिवक्ता श्री के.एस. रस्तोगी के मोबाइल फोन का उपयोग करके शिकायतकर्ता को यही बात बताई थी। यह आरोप लगाया गया था कि जब शिकायतकर्ता ने 50 लाख रुपये देने में अपनी असमर्थता व्यक्त की, तो सुश्री रानू बिस्वास ने प्रस्ताव दिया कि इस राशि को दो किस्तों में विभाजित किया जा सकता है। जब कर-निर्धारिती ने दो किस्तों में भी भुगतान करने में अपनी असमर्थता व्यक्त की, तो सुश्री रानू बिस्वास ने अधिवक्ता को एक सुधार आवेदन दाखिल करने की सलाह दी, जिसे वह शिकायतकर्ता द्वारा भुगतान करने में सक्षम होने पर स्वीकार कर लेंगी।

(ix) अपर आयकर आयुक्त, रैंज 5 द्वारा फाइल का निरीक्षण किया गया, जिन्होंने आदेश की गुणवत्ता के बारे में प्रतिकूल टिप्पणी की। यह नोट किया गया कि की गई वृद्धि कानूनी रूप से अस्थिर थी, खराब तरीके से जांच की गई थी और कर-निर्धारिती के प्रस्तुतीकरण पर विचार नहीं किया गया था। यह पाया गया कि सुश्री रानू बिस्वास द्वारा की गई वृद्धि अधूरी जांच पर आधारित थी। यह भी नोट किया गया कि अपीलीय कार्यवाही के दौरान, मामले को सत्यापन के लिए निर्धारण अधिकारी के पास वापस भेजा गया था और निर्धारण अधिकारी ने आवश्यक पूछताछ की और कर-निर्धारिती के दावों को सत्यापित किया तथा साक्ष्यों और लेखा पुस्तकों के अनुसार उन्हें सही पाया। इस प्रकार, इस मामले में बिना किसी वैध कारण के अत्यधिक कर-निर्धारण के संबंध में लगाया गया आरोप सत्य पाया गया। उपर्युक्त



दोनों वृद्धियों को सीआईटी(ए) और आईटीएटी द्वारा हटा दिया गया है क्योंकि ये वृद्धियां कानून के अनुसार पोषणीय नहीं पाई गईं।

(x) यह भी नोट किया गया कि मामला अपर आयकर आयुक्त, जो कि आवेदक थे, के संज्ञान में लाया गया था, जो कर-निर्धारिती द्वारा दाखिल तथ्यों और साक्ष्यों की उचित जांच और मूल्यांकन सुनिश्चित करने में निर्धारण अधिकारी का पर्यवेक्षण करने में विफल रहे। यह माना गया कि आवेदक अपने पर्यवेक्षी कर्तव्य में विफल रहे। मामला केंद्रीय सतर्कता आयोग को भेजा गया था और सीवीसी द्वारा दिनांक 09.04.2019 के कार्यालय ज्ञाप संख्या 018/ITX/041-415794 के तहत दी गई अपनी सलाह में कोई कार्रवाई अनुशंसित नहीं की गई है।

(xi) समिति का यह विचार था कि जब किसी अधीनस्थ की अनियमितता आवेदक के संज्ञान में लाई गई थी, तो यह सुनिश्चित करना उसका उत्तरदायित्व था कि कर-निर्धारण आदेश आयकर अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार पारित किया जाए।

(xii) समिति ने यह भी नोट किया कि आवेदक अपनी अधीनस्थ सुश्री रानू बिस्वास के विरुद्ध रिश्वत की शिकायत पर कार्रवाई करने में विफल रहा, जिसके परिणामस्वरूप अत्यधिक कर-निर्धारण आदेश पारित हुआ और करदाता को अनुचित उत्पीड़न का सामना करना पड़ा। इस प्रकार, आवेदक एक अप्रभावी पर्यवेक्षी अधिकारी साबित हुआ और शिकायत उसकी सत्यनिष्ठा पर गंभीर संदेह उत्पन्न करती है। समिति ने यह अवलोकन किया कि भले ही आवेदक के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही और शिकायतें बंद कर दी गई हैं, फिर भी रिकॉर्ड पर मौजूद तथ्य उसकी सत्यनिष्ठा पर गंभीर संदेह उत्पन्न करते हैं। इसके अतिरिक्त, जैसा कि सुश्री रानू बिस्वास के विरुद्ध रिश्वत की शिकायत पर उसकी निष्क्रियता से स्पष्ट हुआ है, वह एक अप्रभावी अधिकारी भी साबित हुआ है।

31. बैकुंठ नाथ दास बनाम जिला चिकित्सा अधिकारी के मामले में, जो (1992) 2 एससीसी 299 में रिपोर्ट किया गया है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अनिवार्य सेवानिवृत्ति को नियंत्रित करने वाले सिद्धांतों को संक्षेप में प्रस्तुत किया है। इन्हें निर्णय के पैराग्राफ 34 में दर्ज किया गया है, जिसे नीचे उद्धृत किया गया है:

“34. उपरोक्त चर्चा से निम्नलिखित सिद्धांत उभरते हैं:



(i) अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश कोई दंड नहीं है। इसमें न तो कोई कलंक निहित है और न ही कदाचार का कोई सुझाव।

(ii) यह आदेश सरकार द्वारा यह राय बनाने पर पारित किया जाना चाहिए कि सरकारी कर्मचारी को अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करना जनहित में है। यह आदेश सरकार के व्यक्तिपरक संतोष पर पारित किया जाता है।

(iii) अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश के संदर्भ में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का कोई स्थान नहीं है। इसका अर्थ यह नहीं है कि न्यायिक समीक्षा पूरी तरह से वर्जित है। यद्यपि उच्च न्यायालय या यह न्यायालय मामले की जांच एक अपीलीय न्यायालय के रूप में नहीं करेगा, लेकिन वे हस्तक्षेप कर सकते हैं यदि वे इस बात से संतुष्ट हों कि आदेश (क) दुर्भावनापूर्ण है, या (ख) बिना किसी साक्ष्य के आधारित है, या (ग) इस अर्थ में मनमाना है कि कोई भी उचित व्यक्ति उपलब्ध सामग्री पर ऐसी राय नहीं बनाएगा, संक्षेप में, यदि यह एक विकृत आदेश पाया जाता है।

(iv) सरकार (या समीक्षा समिति, जैसा भी मामला हो) को मामले में निर्णय लेने से पहले सेवा के संपूर्ण रिकॉर्ड पर विचार करना होगा, जिसमें स्वाभाविक रूप से बाद के वर्षों के रिकॉर्ड और प्रदर्शन को अधिक महत्व दिया जाएगा। जिस रिकॉर्ड पर इस प्रकार विचार किया जाना है, उसमें स्वाभाविक रूप से गोपनीय रिकॉर्ड/चरित्र पंजिका में की गई प्रविष्टियां शामिल होंगी, जो अनुकूल और प्रतिकूल दोनों हो सकती हैं। यदि किसी सरकारी कर्मचारी को प्रतिकूल टिप्पणियों के बावजूद उच्च पद पर पदोन्नत किया जाता है, तो ऐसी टिप्पणियां अपना प्रभाव खो देती हैं, विशेष रूप से तब, यदि पदोन्नति योग्यता (चयन) पर आधारित हो, न कि वरिष्ठता पर।

(v) अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश को केवल इस आधार पर न्यायालय द्वारा रद्द नहीं किया जा सकता कि इसे पारित करते समय बिना सूचित की गई प्रतिकूल टिप्पणियों को भी ध्यान में रखा गया था। यह परिस्थिति अपने आप में हस्तक्षेप का आधार नहीं हो सकती।

हस्तक्षेप केवल उपर्युक्त (iii) में वर्णित आधारों पर ही अनुमेय है। इस पहलू पर ऊपर पैरा 30 से 32 में चर्चा की गई है।



32. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क कि समीक्षा समिति द्वारा आरोप-पत्र को विचार में नहीं लिया जाना चाहिए था क्योंकि इसे विद्वान केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, लखनऊ द्वारा मूल आवेदन संख्या 332/00353/2013 में दिनांक 09.04.2018 को पारित निर्णय और आदेश के माध्यम से रद्द कर दिया गया था, भी गलतफहमी पर आधारित है। विद्वान केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, लखनऊ ने आरोप-पत्र को मुख्य रूप से 11 वर्षों के बाद आरोप-पत्र जारी करने में हुई देरी के आधार पर रद्द किया था और गुण-दोष के आधार पर, विद्वान केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, लखनऊ ने यह अवलोकन किया है कि किसी अर्ध-न्यायिक प्राधिकारी के विरुद्ध कोई भी आरोप-पत्र बनाए रखने के लिए, कानून की केवल एक साधारण गलती से बढ़कर कुछ और आरोप लगाना आवश्यक है और जांच एक निरर्थक कवायद होगी। यह न्यायालय इस विचार का है कि समीक्षा समिति को संपूर्ण सेवा रिकॉर्ड की जांच करना आवश्यक है और उसे उन आरोपों को देखने से नहीं रोका जा सकता जो आरोप-पत्र का आधार हो सकते हैं, भले ही अनुशासनात्मक कार्यवाही के संबंध में आरोप-पत्र को रद्द कर दिया गया हो। अनिवार्य सेवानिवृत्ति के उद्देश्य से याचिकाकर्ता के सेवा रिकॉर्ड की जांच करते समय समीक्षा समिति के लिए ऐसे आरोपों पर विचार करना खुला (अनुमेय) है। इन परिस्थितियों में दिनांक 11.09.2015 के कार्यालय ज्ञाप के पैराग्राफ 5 और 6 प्रासंगिक हैं और नीचे उद्धृत किए गए हैं:

“5. जहाँ तक सत्यनिष्ठा पर विचार करने का प्रश्न है, किसी मामले में अनिवार्य सेवानिवृत्ति को बरकरार रखते हुए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निम्नलिखित अवलोकनों को ध्यान में रखा जा सकता है:

अधिकारी अपनी बनाई हुई प्रतिष्ठा के अनुसार ही जीवन व्यतीत करेगा। किसी उचित मामले में, सेवा से बर्खास्तगी की दंडात्मक अनुशासनात्मक कार्रवाई करने के लिए पर्याप्त साक्ष्य नहीं हो सकते हैं। लेकिन उसका आचरण और प्रतिष्ठा ऐसी है कि उसका सेवा में बने रहना लोक सेवा के लिए खतरा और जनहित के लिए हानिकारक होगा।

एस. रामचंद्र राजू बनाम उड़ीसा राज्य

[(1994) 3 एससीसी 424]

इस प्रकार, किसी कर्मचारी की सत्यनिष्ठा पर विचार करते समय, कर्मचारी द्वारा की गई ऐसी कार्रवाई या निर्णय जो पारदर्शी प्रतीत नहीं होते, उसके विरुद्ध प्राप्त



शिकायतें, या संदिग्ध संपत्ति लेन-देन, जिनके लिए विभागीय कार्यवाही शुरू करने हेतु पर्याप्त साक्ष्य नहीं हो सकते हैं, उन्हें ध्यान में रखा जा सकता है। श्री के. कंदास्वामी, आई.पी.एस. (तमिलनाडु: 1966) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय, के. कंदास्वामी बनाम भारत संघ और अन्य, 1996 एआईआर 277, 1995 एससीसी (6) 162, यहाँ प्रासंगिक है। श्री कंदास्वामी द्वारा भारी संपत्ति अर्जित करने और अपने अधीनस्थों से पैसे लेने की लगातार रिपोर्टें थीं। उन्होंने ऐसी संपत्ति लेन-देन में भी भाग लिया जिससे उनकी विश्वसनीयता पर संदेह पैदा हुआ। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने संबंधित नियमों के प्रावधानों के तहत उनकी अनिवार्य सेवानिवृत्ति को बरकरार रखा।

6. इसी प्रकार, सरकारी कर्मचारी के लिए अशोभनीय आचरण की रिपोर्ट भी अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आधार बन सकती है। उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम विजय कुमार जैन, अपील (सिविल) 2083/2002 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार:

यदि किसी सरकारी कर्मचारी का आचरण जनहित के लिए अशोभनीय हो जाता है या लोक सेवाओं में दक्षता में बाधा डालता है, तो सरकार के पास ऐसे कर्मचारी को जनहित में अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करने का पूर्ण अधिकार है।"

33. उपर्युक्त दर्ज की गई समीक्षा समिति की कार्यवृत्त को देखने के बाद, हम संतुष्ट हैं कि समीक्षा समिति द्वारा लिया गया निर्णय समीक्षा समिति के व्यक्तिपरक संतोष पर आधारित है और यह नहीं कहा जा सकता कि यह बिना किसी साक्ष्य के आधारित है। समीक्षा समिति ने कार्यालय जाप दिनांक 11.09.2015 के तहत आवश्यकतानुसार याचिकाकर्ता के संपूर्ण सेवा रिकॉर्ड की जांच की। याचिकाकर्ता का प्रारंभिक सेवा रिकॉर्ड, उसके सेवा रिकॉर्ड के बाद के भाग, जो उसके पक्ष में था, से अधिक प्रभावी रहा।

34. कैप्टन प्रमोद कुमार बजाज बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में, जिसका निर्णय 03.03.2023 को सिविल अपील संख्या 6161/2022 में दिया गया था, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय पर याचिकाकर्ता द्वारा किया गया भरोसा भी किसी काम का नहीं है। उक्त मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस तथ्य को ध्यान में रखा था कि अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश पारित होने के समय कैप्टन प्रमोद कुमार बजाज (सुप्रा) को सेवानिवृत्त होने में एक वर्ष



से कम का समय शेष था। इसलिए, उक्त निर्णय अपने स्वयं के तथ्यों पर आधारित था और वर्तमान मामले से भिन्न है।

35. वर्तमान मामले के तथ्य भिन्न हैं क्योंकि याचिकाकर्ता को उचित प्रक्रिया का पालन करने के बाद और अधिवर्षिता की आयु प्राप्त करने से काफी पहले अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त किया गया है। इसलिए, **कैप्टन प्रमोद कुमार बजाज (उपरोक्त)** का निर्णय याचिकाकर्ता के लिए किसी भी प्रकार से सहायक नहीं हो सकता है।

36. **सूर्यकांत चुनीलाल शाह (उपरोक्त)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिया गया निर्णय भी याचिकाकर्ता के लिए किसी काम का नहीं है, क्योंकि ऊपर दर्ज की गई समीक्षा समिति की कार्यवृत्त यह दर्शाती है कि समीक्षा समिति के पास उस निष्कर्ष तक पहुँचने के लिए पर्याप्त सामग्री उपलब्ध थी जिस पर उनके व्यक्तिपरक संतोष से याचिकाकर्ता की अनिवार्य सेवानिवृत्ति की अनुशंसा की गई थी।

37. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **सूर्यकांत चुनीलाल शाह (उपरोक्त)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करते हुए यह तर्क दिया कि समीक्षा समिति के समक्ष कोई सामग्री नहीं थी, क्योंकि चरित्र पंजिका की प्रविष्टियों में कोई प्रतिकूल टिप्पणी नहीं थी। **उमेद्भाई एम. पटेल (उपरोक्त)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के पैराग्राफ 11 पर भी भरोसा किया गया, जिसमें अनिवार्य सेवानिवृत्ति से संबंधित कानून को संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है, यह तर्क देने के लिए कि पदोन्नति से पूर्व की प्रतिकूल प्रविष्टियों को अनिवार्य सेवानिवृत्ति के लिए विचार में नहीं लिया जा सकता है।

38. याचिकाकर्ता का उपर्युक्त तर्क गलतफहमी पर आधारित है, क्योंकि **उमेद्भाई एम. पटेल (उपरोक्त)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्धारित किया है कि ऐसा कारक अधिकारी के पक्ष में काम करता है, जिसका अर्थ यह है कि यह कानून का कोई पूर्ण सिद्धांत नहीं है कि पदोन्नति से पूर्व की प्रतिकूल सामग्री को समीक्षा समिति द्वारा विचार में नहीं लिया जा सकता।

39. **पंजाब राज्य बनाम गुरदास सिंह के मामले में, जो (1998) 4 एससीसी 92 में रिपोर्ट किया गया है**, माननीय सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने इस तर्क पर विचार किया कि अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश ऐसी सामग्री पर आधारित था जो अस्तित्व में नहीं थी, क्योंकि



उनके विरुद्ध कोई प्रतिकूल टिप्पणी नहीं थी और यदि ऐसी कोई टिप्पणी थी, तो उसे उन्हें सूचित किया जाना चाहिए था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रकार निर्धारित किया है:

“11.....किसी सरकारी कर्मचारी को समय से पहले सेवानिवृत्त करने का निर्णय लेने से पहले अधिकारियों को सेवा के संपूर्ण रिकॉर्ड पर विचार करना आवश्यक है। पदोन्नति प्राप्त करने या दक्षता बाधा को पार करने या उच्च रैंक प्राप्त करने से पहले की कोई भी प्रतिकूल प्रविष्टि समाप्त नहीं होती है और कर्मचारी के सेवाकाल के दौरान उसके समग्र प्रदर्शन पर विचार करते समय उसे ध्यान में रखा जा सकता है कि उसे सेवा में बनाए रखना जनहित में है या नहीं। कर्मचारी के सेवा के संपूर्ण रिकॉर्ड में कोई भी बिना सूचित की गई प्रतिकूल प्रविष्टियाँ भी शामिल होंगी।”

40. राजस्थान राज्य सड़क परिवहन निगम और अन्य बनाम बाबू लाल जांगिड़ के मामले में, जो (2013) 10 एससीसी 551 में रिपोर्ट किया गया है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अवलोकन किया है कि:

“22. उपरोक्त से यह स्पष्ट रूप से निष्कर्ष निकलता है कि बट्रीनाथ [(2000) 8 एससीसी 395: 2001 एससीसी (एल एंड एस) 13: (2000) 6 स्केल 618] में दो न्यायाधीशों की पीठ के निर्णय द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण सही नहीं है और गुरदास सिंह ((1998) 4 एससीसी 92: 1998 एससीसी (एल एंड एस) 1004: एआईआर 1998 एससी 1661) में इस न्यायालय की ये टिप्पणियाँ कि पदोन्नति या दक्षता बाधा को पार करने या उच्च रैंक प्राप्त करने से पहले की प्रतिकूल प्रविष्टियाँ समाप्त नहीं होती हैं और कर्मचारी के समयपूर्व सेवानिवृत्ति के मामले पर विचार करते समय उसके समग्र प्रदर्शन को ध्यान में रखते हुए उन्हें संज्ञान में लिया जा सकता है।

23. प्यारे मोहन लाल बनाम झारखंड राज्य [(2010) 10 एससीसी 693: (2011) 1 एससीसी (एल एंड एस) 550] में निर्णय के बाद जो कानूनी सिद्धांत स्पष्ट और स्थापित हुआ है, वह यह है कि किसी कर्मचारी की पदोन्नति के बाद उससे पूर्व की प्रतिकूल प्रविष्टियों की कोई प्रासंगिकता नहीं रह जाती है और जब सरकारी कर्मचारी के मामले पर अगली पदोन्नति के लिए विचार किया जाना हो, तो उन्हें समाप्त माना जा सकता है। हालाँकि, यह "धुल जाने का सिद्धांत" तब लागू नहीं होगा जब



किसी कर्मचारी के मामले का आकलन यह निर्धारित करने के लिए किया जा रहा हो कि क्या वह सेवा में बनाए रखे जाने योग्य हैं या उसे अनिवार्य सेवानिवृत्ति दी जानी चाहिए। इसके पीछे का तर्क यह है कि चूंकि ऐसा मूल्यांकन "संपूर्ण सेवा रिकॉर्ड" पर आधारित होता है, इसलिए पुरानी प्रतिकूल प्रविष्टियों या पुरानी अवधि के रिकॉर्ड को ध्यान में न लेने का प्रश्न ही नहीं उठता। हम यह जोड़ना चाहेंगे कि यद्यपि ऐसे रिकॉर्ड को ध्यान में रखा जा सकता है, उसी समय, तत्काल पिछली अवधि के सेवा रिकॉर्ड को उचित विश्वसनीयता और महत्व दिया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, कुछ बहुत पुरानी प्रतिकूल प्रविष्टियों के विपरीत, जहाँ तत्काल पिछला रिकॉर्ड अनुकरणीय प्रदर्शन दिखाता हो, केवल पुरानी प्रतिकूल प्रविष्टियों के आधार पर किसी व्यक्ति को सेवानिवृत्त करने के लिए हाल के ऐसे रिकॉर्ड की अनदेखी करना, शक्ति के मनमाने प्रयोग का एक स्पष्ट उदाहरण होगा। हालाँकि, यदि पुराना रिकॉर्ड किसी व्यक्ति की सत्यनिष्ठा से संबंधित है, तो वह सरकारी कर्मचारी की समयपूर्व सेवानिवृत्ति के आदेश को उचित ठहराने के लिए पर्याप्त हो सकता है।"

(हमारे द्वारा जोर दिया गया है)

41. राम मूर्ति यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में, जो (2020) 1 एससीसी 801 में रिपोर्ट किया गया है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्धारित किया है कि नियोक्ता के व्यक्तिपरक संतोष पर आधारित अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश की न्यायिक समीक्षा का दायरा अत्यंत संकीर्ण और सीमित है और न्यायालय, न्यायिक समीक्षा में, एक अपीलीय प्राधिकारी के रूप में उस पर निर्णय नहीं ले सकता है। उक्त निर्णय का पैराग्राफ 6 नीचे उद्धृत किया गया है:

"6.....नियोक्ता के व्यक्तिपरक संतोष पर आधारित अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश की न्यायिक समीक्षा का दायरा अत्यंत संकीर्ण और सीमित है। केवल तभी जब यह पाया जाए कि यह मनमाने या सनकी आधारों पर आधारित है, दुर्भावना से ग्रस्त है, या प्रासंगिक सामग्रियों की अनदेखी करता है, तो हस्तक्षेप के लिए सीमित गुंजाइश हो सकती है। न्यायालय, न्यायिक समीक्षा में, एक अपीलीय प्राधिकारी के रूप में उस पर निर्णय नहीं ले सकता है। अनिवार्य सेवानिवृत्ति के मामले में नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का कोई अनुप्रयोग नहीं है।"



42. इस प्रकार, हम इस राय के हैं कि केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण, लखनऊ द्वारा मूल आवेदन संख्या 332/00450/2019 "आलोक कुमार मित्रा बनाम भारत संघ" में दिनांक 20.02.2023 को पारित निर्णय और आदेश, साथ ही दिनांक 10.06.2019 का आदेश जिसके द्वारा याचिकाकर्ता को मौलिक नियम 56(जे) का उपयोग करते हुए आयकर आयुक्त के पद से भारतीय राजस्व सेवा से अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त किया गया था, और अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश के विरुद्ध याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन को अस्वीकार करने वाला दिनांक 16.08.2019 का आदेश, किसी भी अवैधता या दुर्बलता से ग्रस्त नहीं हैं। याचिकाकर्ता को कानून की उचित प्रक्रिया का पालन करने के बाद और समीक्षा समिति की अनुशंसा के अनुसार अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त किया गया है।

43. यह न्यायालय इस विचार का है कि स्क्रीनिंग/समीक्षा समिति के समक्ष अपना व्यक्तिपरक संतोष दर्ज करने के लिए पर्याप्त सामग्री मौजूद थी, जिसे माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कई निर्णयों में निर्धारित किए गए अनुसार, रिट क्षेत्राधिकार के तहत न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करते हुए यह न्यायालय प्रतिस्थापित नहीं कर सकता है। तदनुसार, रिट याचिका खारिज किए जाने योग्य है।

44. रिट याचिका **खारिज** की जाती है।

45. वादव्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(न्यायमूर्ति अमिताभ कुमार राय) (न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चंद्रा)

02 फरवरी, 2026

महेश